आरोग्य एवं शान्तिदायिनी ध्यान-साधना पद्धति

– श्री रतन मुनि

आज हम साधना के क्षेत्र में प्रवेश कर रहे हैं। पहले यह समझ लें कि साधना क्या है, इसका लक्ष्य और उद्देश्य क्या है? इसके बाद मैं आपको साधना की विधि बताऊँगा।

साधना है क्रमिक उन्नति; अपने साध्य की ओर बढ़ना। जब यह उन्नति अपनी चरम सीमा तक पहुँच जाती है तो साधना स्वयं ही सिद्धि बन जाती है।

सिद्धि का अभिप्राय है - लक्ष्य में सफलता तथा आनन्द की उपलब्धि। आनन्द भौतिक नहीं अपितु आत्मिक! स्व-यानी आत्मा के आनन्द की अनुभूति-स्वानन्दानुभूति-उसका अनुभव। आत्मा स्वयं आनन्द-धन है, उस आनन्द की अनुभूति या उसका रसास्वादन, उसमें लीनता, तल्लीनता, डूब जाना, विभोर हो जाना ही स्वानन्दानुभूति है, स्वात्मानुभाव हैं, आत्मिक आनन्द रूपी अमृत का पान करना है।

यह जिस विधि से प्राप्त होता है, उसी को साधना कहा गया है। यह साधना ध्यान रूप है, ध्यान-साधना ही आत्मारूपी अमृत घट को उद्घाटित करने का और इस अमृतानन्द को प्राप्त करने का एक मात्र उपाय है, मार्ग है, पद्धति है। इस ध्यान पद्धति को आपको समझना है।

मैं इसे चार चरणों में विभाजित करके आप सबके समक्ष रखूँगा, जिससे आप इस ध्यान पद्धति को सरलता से हृदयंगम कर सकें और इसके प्रयोग से अपने लक्ष्य तक पहुँच सकें, स्वात्मा के आनन्द की रसानुभूति कर सकें।

प्रथम चरण

प्रथम चरण को हम नवकार मन्त्र से प्रारम्भ कर रहे हैं, उसके पश्चात् वीर-वन्दन, गुरू-वन्दन सूत्र का उच्चारण करेंगे और फिर मैं आपको कुछ ऐसे हल्के आसनों के बारे में बताऊँगा, जिससे आप अपनी काया को स्थिर करके ध्यान की पूर्वभूमिका तैयार कर लें। क्योंकि काया काय-योग की स्थिरता के अभाव में ध्यान एकाग्र नहीं हो पाता, वचनयोग और मन भी चंचल बना रहता है, इधर-उधर घूमता रहता है। जब कि ध्यान के लिये मन का स्थिर होना अति आवश्यक है।

मन स्थिर हुए बिना ध्यान में आनन्द नहीं आ सकता। ध्यान का लक्षण ही यह दिया है

एकाग्रचिन्तानिरोधी ध्यानम्।

चित्त अथवा मन को एक ध्येय पर स्थिर करना ही ध्यान है। जिस प्रकार वायुरहित स्थान में दीपक की लौ स्थिर हो जाती हैं, तनिक भी कॉपती नहीं, उसी प्रकार जब मन अपने ध्येय पर स्थिर हो जाता है, तभी ध्यान स्थिति बनती है।

लेकिन आप तो जानते ही हैं कि मन महाबली और वायु से भी अधिक वेग वाला हैं, इसको वश में करना, एक ध्येय पर स्थिर करना बड़ा ही कठिन कार्य है।

गीता में अर्जुन ने भी श्रीकृष्ण के समक्ष यही प्रश्न किया और उत्तराध्ययनसूत्र में भी केशीस्वामी ने भी यही जिज्ञासा रखी हैं।

श्रीकृष्ण ने मन को वश में करने का उपाय अभ्यास और वैराग्य बताया है तथा गौतम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वामी ने धर्म-शिक्षा।

इस मन को वश में करने का उपाय ध्यान में भी बताया है। वह कैसे वश में होता है? किस प्रकार उसे एकाग्र किया जाता है? इस विषय में मैं आपको आगे बताऊँगा।

हाँ तो, अब हम ध्यान पद्धति के प्रथम चरण को लें।

इस चरण में सर्वप्रथम हमें नवकार मंत्र का सस्वर उच्चारण करना है।

मैं समझता हूँ आप सभी को यह महामन्त्र कंठाग्र होगा, आप लोक नित्य इसकी माला भी जपते होंगे।

लेकिन इस ध्यान पद्धति में इसके उच्चारण में कुछ विशेषता लानी होती है। उच्चारण सस्वर तो हो ही साथ सरस भी हो, लययुक्त बोलें, उच्चारण में शीघ्रता न करें, प्रत्येक स्वर, बिन्दु आदि का ध्यान रखें, अनावश्यक विलम्ब भी न करें।

हाँ तो अब मैं नवकार मन्त्र का सस्वर उच्चारण करता हूँ, आप सब भी मेरे स्वर के साथ स्वर मिलाकर बोलें

नमो अरिहंताणं
नमो सिद्धाणं
नमो आयरियाण
नमो उवज्झायाणं
नमो लाए सव्वसाहूणं

अब हमें वीर वन्दन करना है।

आप सबको ज्ञात ही है कि भगवान महावीर वर्तमान, काल की चौबीसी के अन्तिम तीर्थंकर हैं। उन्हीं भगवान महावीर का शासन चल रहा है।

अब मेरे साथ भगवान महावीर का वन्दन श्लोक बोलिए। यह श्लोक संस्कृत भाषा में है, उच्चारण में थोड़ी सावधानी अपेक्षित है।

वीर: सर्वसुरासुरेन्द्रमहिता,
वीरं बुधा संश्रिता;
वीरेणाभिहत: स्वकंर्मनिचयो,
वीराय: नित्यं नम:।
वीरात् तीथीमेदं प्रवृत्तमतुलं,
वीरस्य घोरं तपो:,
वीरे श्रीधृतिकीर्तिकांति निचयो
हे वीर! भद्रं दिश:।।

तीर्थकर भगवान की अनुपस्थिति में हमारे सबसे बड़े उपकारी हैं-गुरूदेव! गुरू भगवान के बताए हुए मार्ग पर स्वयं चलते है और हम सब को वह मार्ग बताकर चलने की प्रेरणा देते हैं। हमें सत्य दृष्टि देते हैं, सन्मार्ग बताते हैं और आचरण-शुद्धि की प्रेरणा देते हैं। वे सम्यक्-ज्ञान-दर्शन-चरित्र में सहायक बनते है।

गुरू का महत्व समझने के बाद अब हम गुरू वन्दन करें।

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयहिणं करेमि, वंदामि-नमंसामि, सक्कारेमि सम्माणेमि, कल्लाणं मंगलं, देवयं, चेइयं, पज्जुवासामि, मत्थएण वंदामि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब आइये थोड़ा सा आसनों का अभ्यास करें।

आसन शब्द से चौंकिये मत। मैं आपको ऐसे साधारण और हल्के आसन बताऊँगा जिन्हे आप सरलता से कर सकेंगे।

आसन का अभिप्राय है - शरीर को स्थिर करना, शरीर की चंचलता समाप्त करना। क्योंकि ध्यान साधना पद्धति में ऐसा नियम है कि शरीर की स्थिरता से ही मन स्थिर होता है। यदि आपका शरीर स्थिर न रहा, बार-बार आसन बदलते रहे तो मन भी चंचल बना रहेगा और जब तक मन स्थिर न होगा, स्वानन्दानुभूति भी न होगी।

योग ग्रन्थों में दो प्रकार के आसन बताये गये हैं - (१) ध्यानासन और (२) शरीरासन। शरीरासनों को स्थूल आसन और ध्यानासनों को सूक्ष्म आसन भी कहा जा सकता है। ध्यानासन पद्मासन, कार्योत्सर्ग आदि हैं, यह ध्यान में - आत्मानुभूति में सहायक होते हैं।

शरीरासनों का उद्देश्य शारीरिक और मानसिक कम्पनों में संतुलन स्थापित करना है। यह शरीर और मन को स्थिर भी करते है। साथ ही यह ध्यानासनों की पूर्वभूमिका निभाते हैं। स्थूल आसन सिध्ध होने के बाद ही सूक्ष्म आसन सिध्ध हो पाते हैं। ध्यान साधना पद्धति में शरीर आसनों का यह विशेष महत्व है।

अब मैं आपको ऐसे सरल आसन बताता हूँ जिनके द्वारा आप शारीरिक और मानसिक स्फूर्ति तो प्राप्त करेंगे ही, साथ ही साथ शरीर की माँसपेशियों और धमनियों में लचीलापन आयेगा, रक्त संबंधी विकार दूर होंगे और शरीर में स्थिरता आयेगी, यानी आप लोग अधिक समय तक एक आसन से स्थिर बैठे रहने पर भी न ऊब का अनुभव करेंगे और न थकेंगे ही।

हाँ तो, अब आप सब लोग स्थिर हो कर बैठ जायें। शरीर न अधिक तना रहे, और न शिथिल हो। मेरूदण्ड (सुषुम्ना-रीढ़ की हड्डी) सीधा रहें, उसी सीध में गरदन और कपाल भी।

अब आप अपना दाहिना पांव फैलाइए, सीधा कर दीजिये और फिर सिकोड़िये, पूर्व स्थिति में ले आइये। इस तरह ९ बार करिए। इसी प्रकार बाँये पाँव और दायें तथा बाँयें हाथों को सिकोड़िए फैलाइए। यह सभी क्रियाएँ नौ-नौ बार करिए।

अब आप अपनी गरदन को धीरे-धीरे दायीं ओर घुमाइए और फिर बाँयीं ओर घुमाइए, फिर पूर्ववत् सीधी करिए, सामने देखने लगिए। यह एक बार की क्रिया हुई, ऐसी क्रिया नौ बार करिए

इसी प्रकार आँखों का व्यायाम भी करिए। पुतलियाँ पहले सीधी रखिए। फिर दायीं ओर, ऊपर की ओर, बाँयी ओर और नीचे की ओर घुमाकर, पुतलियों को सीधी करके एक बिन्दु पर तथा सामने किसी भी वस्तु पर टिका दीजिए। कुछ क्षण तक अपलक दृष्टि से उस बिन्दु को देखते रहिए मन को उस वस्तु से-उसके रूप, आकार, रंग आदि से संयोजित करने का प्रयास करिए। जितने अधिक समय तक देख सकें, देखते रहिए, लेकिन ध्यान रखें, आँखें थकें नहीं, उनमें पानी न आ जाए।

हाथों और पैरों, तथा गर्दन के इस हल्के व्यायाम से नसों में लचीलापन रहता है, स्फूर्ति आती है। गरदन का व्यायाम गरदन में लचीलापन लाने के साथ-साथ ध्यान में भी सहायता होता है, क्योंकि विशुद्धि चक्र आनन्द केन्द्र कण्ठ स्थान में ही अवस्थित है, गरदन के व्यायाम से वह सजग होने को प्रेरित होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आँखों के व्यायाम से नेत्र-ज्योति बढ़ती है, छोटे-मोटे विकार दूर हो जाते हैं, दृष्टि संबंधी शिरा-धमनी-नसों में लचीलापन आने से रक्तसंचार निराबाध होता है, मोतियाबिन्दु जैसी बीमारियॉं नही होतीं, वृद्धावस्था तक नेत्रज्योति मन्द नही होती।

नेत्रों का एक वस्तु पर टिके रहना और मन का उस वस्तु के रूप आदि से संयोजित रहना, ध्यान-साधना में परम सहायक है।

आगमों में ध्यान के लिए स्थान-स्थान पर आता है -

एगपोग्गल निविट्ठदिट्ठीए।

(किसी भी एक पुद्गल-पौद्गलिक वस्तु पर निर्निमेष दृष्टि से लगातार अवलोकन करते रहना।)

भगवान महावीर की ध्यान साधना के विषय में आचारांग में उल्लेख आता है -

अदु पोरिसिं तिरियभित्तं, चक्खुमासज्ज अंतसों झाई।

(भगवान ने प्रहर-प्रहर तक तिरछी भित्ति पर आँख टिकाकर ध्यान किया।)

इसीलिए मैंने आप से कहा कि किसी भी वस्तु को यथासंभव जितने समय तक आप अपलक दृष्टि से देख सकें, देखें और मन को उस वस्तु में संयोजित करें। यह बाह्य वस्तु का स्थूल ध्यान धीरे-धीरे सूक्ष्म रूप ग्रहण कर लेगा, आप अपने शरीरगत चैतन्य केन्द्रों पर ध्यान टिका सकेंगे, शरीर के अन्दर होती हुई क्रियाओं को देख सकेंगे और आत्म-साक्षात्कार करने में भी सक्षम हो सकेंगे।

तो अब आइये, हम इसी ओर बढें। इन हाथ, पाँव, गरदन आदि के हल्के व्यायामों के बाद अपने शरीर की ओर दृष्टि डालें इसकी क्रियाओं को अनुशासित करने की विधि समझें।

दूसरा चरण

यह हमारी स्वानन्दानुभूति ध्यान साधना पद्धति का द्वितीय चरण है। इसमें हमें शरीर की क्रियाओं को नियंत्रित तथा अनुशासित करना है, क्योंकि इस शरीर (औदारिक शरीर - आपका-हमारा जैसा शरीर) से ही ध्यान साधना की जा सकती है और वह भी तब जब शरीर की क्रियाओं को हम साध लें।

इस शरीर साधना की क्रिया को योग की भाषा में प्राणायाम कहा जाता है। प्राणायाम में दो शब्द हैं-प्राण+आयाम = प्राणों का अभ्यास-व्यायाम।

प्राण श्वासोच्छ्वास को कहा जाता है। श्वासोच्छ्वास शरीर की सहज क्रिया है। प्रत्येक जीवित प्राणी श्वास लेता है और उच्छ्वास बाहर छोड़ता है। शरीर की सहज क्रिया को नियन्त्रित करना, अपनी इच्छा के अनुकूल चलाना ही प्राणायाम है।

इसको मैं तीन खण्डों में आपको समझाऊँगा -

१/ दीर्घ श्वास।

२/ सौम्य भस्त्रिका क्रिया।

३/ पूरक, कुम्भक, रेचक क्रिया।

दीर्घ श्वास - श्वासोच्छ्वास जीवन का लक्षण है, प्राणीमात्र श्वासोच्छवास लेता है, यह शरीर की सहज क्रिया और है। किन्तु योग ध्यान साधना पद्धति में इसमे कुछ विशेषता लाई जाती है।

दीर्घश्वास, वस्तुत: श्वासोच्छ्वास शुद्धि का उपाय है। सामान्यतया श्वास लेते समय हम कम ऑक्सीजन लेते हैं; जबकि दीर्घश्वास में ऑक्सीजन की मात्रा काफी खींच ली जाती है। और आप जानते ही हैं कि ऑक्सीजन हमारे रक्त को शुद्ध करती है। इस प्रकार दीर्घश्वास से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रक्त-शुद्धि होती है।

इसके अतिरिक्त सामान्य श्वास से ग्रहण की हुई प्राणवायु शरीर के प्रत्येक अवयव में पूर्णरूप से नहीं पहुँच पाती, जबकि दीर्घश्वास द्वारा ग्रहण की हुई प्राणवायु फेफड़ों, शरीर आदि के लगभग सभी अंगों में पहुँच जाती है।

दीर्घवास का अभिप्राय है - गहरा श्वास लेना। इतना गहरा कि रीढ़ की हड्डी के अन्तिम सिरे (गुदा-मूल) तक पहुँच जाय। क्योंकि यहीं मूलाधार चक्र है, जो ऊर्जाकेन्द्र है और यहीं कुण्डलिनी का मुख है, यहीं से साधक सुषुम्ना नाड़ी में होता हुआ अन्य सभी चैतन्य केन्द्रों के चक्रों को जागृत करता है।

दीर्घश्वास के विषय में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वह लयबद्ध और सामान्य समय वाली हो। प्रथम दीर्घश्वास में जितना समय-यथा-१५ सेकेंड लगें तो दूसरी दीर्घ श्वास तथा आगे की अन्य प्रत्येक दीर्घश्वास में भी १५ सेकेंड का ही समय लगना चाहिए, न कम न ज्यादा।

हाँ तो अब हम दीर्घश्वास का अभ्यास करें।

प्रथम आप सब सुखासन अथवा पद्मासन में स्थित हो जाये। मेरूदण्ड, ग्रीवा, कपाल सब एक सीध में रहें बिल्कुल स्ट्रेट लाइन में। शरीर न अधिक तना हुआ रहे न शिथिल, सहज मुद्रा रखें, हृदय में प्रसन्नता, उत्साह हो तथा मुख पर मधुर मुस्कान।

अब दीर्घ सांस लें। प्रथम बार, द्वितीय बार और तीसरी बार।

तीन दीर्घश्वासों का अभ्यास प्रारम्भिक दशा में यथेष्ट है।

सौम्य भस्त्रिका क्रिया :- भस्त्रिका प्राणायाम का ही एक प्रकार है। मैंने इसको 'सौम्य' नाम दिया है। कुछ योग ग्रन्थों में इसको **'समशीतोष्ण'** भी कहा गया है। इसका कारण यह है कि यह प्राणायाम क्रिया न तो शरीर और मन में अधिक शीत उत्पन्न करती है और न ही अधिक उष्णता लाती है। अपितु सौम्यावस्था में ही शरीर तथा मन रहते हैं। इसी विशेषता के कारण इसका **सौम्य** नाम उचित है।

अब इस भस्त्रिका प्राणायाम की क्रिया विधि समझ लें। इसे चार प्रकार से किया जाता है (१) मध्यम भस्त्रिका (२) वाम भस्त्रिका (३) दक्षिण भस्त्रिका और (४) अनुलोम प्रतिलोम भस्त्रिका।

(१) **मध्यम भस्त्रिका** - लुहार की धमनी के समान दोनों नासापुटों से पूरी शक्ति लगाकर दीर्घ श्वास का मूलाधार चक्र तक पूरक करें और तत्काल रेचन (भरी प्राण वायु को निकाल देना) कर दें। इस तरह नौ बार करें तथा दशवीं बार कुम्भक (कुछ समय तक मूलाधार चक्र में वायु को रोककर) करके रेचन कर दें।

यह एक प्राणायाम हुआ। इस प्रकार के प्रारम्भ में तीन प्राणायाम करें। फिर शक्ति के अनुसार बढ़ाते जायें।

(२) **वाम भस्त्रिका** - दाहिने नासापुट को अँगूठे अथवा तर्जनी अँगुली से दबाकर बन्द कर दें, वाम नासापुट से दीर्घश्वास लें।

इसकी शेष क्रिया मध्यम भस्त्रिका के समान है।

(३) **दक्षिण भस्त्रिका** - बायें नासापुट को अँगूठे से बन्द करके दाहिने नासापुट से दीर्घश्वास लें। शेष विधि मध्यम भस्त्रिका के समान ही करें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) **अनुलोम विलोम भस्त्रिका** - बाएँ नासारन्ध्र से दीर्घ श्वास का पूरक मूलाधार चक्र तक करें। फिर दाहिने नासापुट से निकाल रेचन दें। इसी प्रकार दक्षिण नासारंध्र से दीर्घश्वास लेकर बाऐं नासारन्ध्र से निकाल दें। इन प्राणायामों को करते समय पूरक में मूलाधार चक्र पर कुछ सेकंड तक ध्यान स्थिर करें, कुम्भक में मणिपूरचक्र नाभिस्थान पर और रेचन में नासाग्र पर ध्यान जमाने का प्रयास करें।

इन प्राणायामों-भस्त्रिका प्राणायाम से मस्तिष्क शूल आदि रोग मिट जाते हैं, फेफड़ों और मस्तिष्क की जकड़न जो श्लेष्म आदि के कारण हो गई हो, वह मिट जाती है, नासिकारंध्र साफ हो जाते हैं, सर्दी का प्रकोप समाप्त हो जाता है और मूलाधार तथा मणिपूरचक्र जागृत होने लगते हैं।

पूरक, रेचक, कुम्भक क्रिया - भस्त्रिका प्राणायाम के वर्णन में मैंने तीन शब्द बताये हैं - पूरक, कुम्भक और रेचक। इनका अभिप्राय समझना आवश्यक है। साथ ही यह जानना भी जरूरी है कि इन तीनों के समय का अनुपात कितना रखना चाहिए।

वस्तुस्थिति यह है कि योग और ध्यान पद्धति वैज्ञानिक आधार पर अवस्थित हैं। इनके निश्चित नियम हैं। अनर्गल क्रिया कोई भी नहीं है और अपनी मनमानी भी नहीं चल सकती। यदि कोई साधक योग्य गुरू से निर्देशन लिए बिना मनमानी योग और ध्यान साधना करता है तो उसके अनिष्टकारी परिणाम उसे भोगने पड़ते हैं। इसीलिए कहा गया है -

देखा - देखी साधे जोग।
छीजै काया बाढ़े रोग।।

तो अब आप रेचक, पूरक, कुम्भक-इन तीनों का यथार्थ स्वरूप जान लें और साथ ही इनकी विधि और समय का अनुपात भी।

पूरक का अभिप्राय है-श्वास के द्वारा बाह्य वातावरण में फैली हुई प्राणवायु को नासारन्ध्रों से शरीर के अन्दर ले जाना, **कुम्भक** इस वायु को शरीर के किसी भी चक्र अथवा स्थान पर रोकना है और **रेचक** इस वायु को नासारन्ध्रो द्वारा बाहर निकालना है। क्रिया के रूप में यह **रेचन, कुम्भन और पूरण** कहलाते हैं तथा **रेचक, पूरक और कुम्भक** इनका संज्ञा रूप हैं।

योग-महर्षियों ने रेचक, कुम्भक और पूरक का अनुपात २:४:१ बताया है, यानी। सेकण्ड में पूरक करें तो ४ सेकण्ड तक कुम्भक और २ सेकण्ड में रेचन कर दें।

यदि आप 'अर्हं' मंत्र को लें तो 'अ' अक्षर के पूरक में ४ सेकण्ड का समय लगायें 'हँ' अक्षर के साथ १६ सेकंड का कुम्भक और 'म्' अक्षर का मानसिक उच्चारण करते हुए ८ सेकण्ड में इसका रेचन कर दें।

कुछ योग-शिक्षक अंकगणित के अंकों ४:१६:८ के साथ पूरक, कुम्भक, रेचक करने की शिक्षा देते हैं। पर मैं आपको 'अर्हम्' मंत्र के मानसिक उच्चारण के साथ पूरक, कुम्भक, रेचक क्रिया करने की प्रेरणा देना चाहता हूँ। इसका कारण यह है कि यह मंत्र अर्हन्त परमेष्ठी का वाचक है। इसके द्वारा मन-मस्तिष्क भी शुद्ध होता है, हृदय में श्रद्धा-भक्ति की भावना का संचार होता है। ध्यान करते समय आँखों के सामने या नासाग्र पर 'अर्हन्त' परमात्मा का रूप देंखे। इससे अपार आत्मिक प्रसन्नता प्राप्त होती है।

तो अब आप 'अर्हम्' मंत्र के मानसिक उच्चारण के साथ पूरक, कुम्भक और रेचक प्राणायाम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रिया करें।

तीसरा चरण

आप प्राणायाम क्रिया को समझ चुके हैं, इसका अभ्यास भी हो गया है। अब मैं आपको तीसरे चरण की ओर ले चलना चाहता हूँ। यह तीसरा चरण है - कार्योत्सर्ग अथवा शवासन।

मैंने कायोत्सर्ग को शवासन कहा हैं, इसमें एक रहस्य है, वह रहस्य योग और ध्यान साधना पद्धति से संबंधित है।

शास्त्रों के अनुसार कायोत्सर्ग, एक तप है। यह खड़े होकर भी किया जा सकता है, बैठकर भी और शव के समान लेटकर भी।

कायोत्सर्ग का शाब्दिक अर्थ है-काया का उत्सर्ग-त्याग। लेकिन साधक काया का त्याग नहीं करता क्योंकि काया का त्याग तो आत्महत्या है, जो सभी दृष्टियों से निन्दित है।

तब कायोत्सर्ग का योग और ध्यान में अर्थ है-काया के ममत्व का त्याग; साथ ही काषायिक वृत्तियों का, चिन्ताओं, उद्वेगों का त्याग जो शरीर, मन और आत्मा में तनाव उत्पन्न करती हैं, यानी मन-मस्तिष्क को तनावरहित करना कायोत्सर्ग है।

तनावरहितता को यदि विधेयात्मक रूप में कहें तो इसको शिथिलता शब्द से व्यक्त कर सकते हैं और पूर्ण शिथिलता मानव को जीवित अवस्था में, शवासन में ही प्राप्त हो पाती है। इसीलिए मैंने यहाँ शवासन शब्द का प्रयोग किया है।

शवासन का अभिप्राय है शव के समान निश्चेष्ट और शिथिल होकर लेट जाना। सिर्फ शरीर ही नहीं, मन, प्राण, आवेग, संवेग सभी शिथिल हो जावें, सम और शांत हो जावें।

मन की शिथिलता का अभिप्राय है कि वह (मन) जो विषय-कषायों की ओर दौड़ लगाता रहता है उसकी वह दौड़ कम हो जाय, वह शांत-उपशांत हो जाय।

इसी प्रकार प्राण (श्वासोच्छ्वास) की क्रिया जो प्रतिपल तीव्रगति से (वैज्ञानिकों के मतानुसार ४ सैकण्ड में एक श्वासोच्छवास) हो रही है, उसकी भी गति कम-निम्नतम सीमा तक कम हो जाय।

प्राण अथवा श्वासोच्छ्वास को शांत-उपशांत अथवा उसकी गति कम करना इसलिए आवश्यक है कि श्वोच्छ्वास की तीव्र गति से शरीर में चंचलता अधिक होती है। यदि गति कम होगी तो शरीर के आन्तरिक भागों, नसा-जाल आदि में भी चंचलता कम होगी। और चंचलता जितनी कम होगी उतना ही काययोग स्थिर होगा।

मन की भी दो अवस्थाएँ हैं-चंचल और स्थिर। प्राणशक्ति (प्राणवायु ग्रहण करना, छोड़ना अथवा श्वासोच्छ्वास) मन को भी चंचलता प्रदान करती है। इसीलिए कायोत्सर्ग अथवा योग की भाषा में शवासन में श्वासोच्छ्वास को सीमित करना अथवा शिथिल करना अति आवश्यक है।

आप सोच रहे होंगे, मन तो अत्यधिक चंचल हैं, उसे शिथिल करना बहुत कठिन है। लेकिन यह काम भावना से संभव है।

आप शवासन में वह भावना करिए-

१/शरीर शिथिल हो रहा है।

२/ श्वास शिथिल हो रहा है।

३/ ममत्व विसर्जन हो रहा है।

४/ मै आत्मस्थ हो रहा हूँ।

 संसार में प्रत्येक पुरुष के जीवन में आत्म निरीक्षण द्वारा सिद्धि के एक-दो अवसर मिलते है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावना में बहुत शक्ति होती है। विष भी भावनाओं द्वारा अमृत रसायन-आरोग्य वर्धक बन जाता है।

आचार्य सिद्धसेन का कथन है -

पानीयमप्यमृतमित्यनुचिन्त्यमानं

किं नाम नो विष विकारमपाकरोति

अभिमंत्रित पानी को अमृत मानकर सेवन करने पर क्या विष बाधा दूर नहीं होती?

·यह सत्य है- **यादृशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी।** जैसी भावना होती है, वैसी ही सिद्धि होती है। आप भी भवानाओं द्वारा मन, काया, श्वास आदि को शिथिल कर सकते हैं। मन, श्वास, शरीर आदि की शिथिलता होने पर आप अन्तर्यात्रा कर सकते हैं।

चतुर्थ चरण

अब मैं आपको अन्तरयात्रा की ओर ले चलता हूँ। सबसे पहले मैं यह बताना चाहूँगा कि अन्तरयात्रा का अभिप्राय है भीतर जाना। भीतर का अभिप्राय है शरीर के अन्दर अवस्थित चैतन्य केन्द्रो को प्राणशक्ति से जागृत करना।

हम बाह्य संसार से बहुत परिचित हैं। हमारे मन और इन्द्रियों की स्थिति ही ऐसी है कि उनकी संपूर्ण गति बाहर की ओर-बाह्य पदार्थो की ओर ही हो रही हैं। हम अपने शरीर के भी बाह्य भाग को ही देखते है। हमारे शरीर के अन्दर क्या हो रहा हैं, इसकी ओर हमने लक्ष्य ही नहीं दिया, कभी जानने की चेष्टा ही नहीं की।

हमारा शरीर एक संपूर्ण लोक हैं, इसमें आत्मा का निवास है। इस औदारिक शरीर के अन्दर एक सूक्ष्म शरीर है। शास्त्र इसे तेजस शरीर कहते हैं और वैज्ञानिक विद्युन्मय शरीर।

इस तेजस शरीर में हमारी चैतन्य धारा प्रवाहित हो रही है। यद्यपि संपूर्ण शरीर में ही चेतना का निवास हैं, किन्तु कुछ विशेष केन्द्र ऐसे हैं, जिनमें चैतन्य शक्ति का प्रवाह अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक है। इन विशिष्ट क्षेत्रों अथवा केन्द्रों को योग की भाषा में 'चैतन्य केन्द्र' अथवा 'चक्र' कहा गया है।

चक्र कहने का कारण यह है कि इन विशिष्ट केन्द्रों पर तेजस शरीर के (और औदारिक शरीर के भी) परमाणु चक्राकार रुप में अवस्थित हैं, जिनमें आत्म-चेतना की धारा चक्राकार रुप में घूमती हुई प्रवाहित होती है। इसीलिए यहाँ आत्मचेतना की धारा विशेष बलवती हो गई है। कुछ योग ग्रन्थों में इन्हें कमल या पद्म नाम से भी अभिहित किया गया है।

इनका मार्ग सुषम्ना के मध्य में होता हुआ गया है। जिसका मूल अथवा प्रवेश द्वारा सुषुम्ना का निचला सिरा (गुदा स्थान पर जहाँ रीढ की हड्डी का अन्त है उस सिरे पर) मूलावार चक्र में है और इसका शीर्ष कपाल में (कपाल का मध्य भाग-जहाँ ब्रह्मरंध्र है) सहस्त्रार चक्र अथवा ज्ञान केन्द्र में अवस्थित है।

अन्तर्यात्रा से मेरा अभिप्राय इन्हीं चैतन्य केन्द्रो-चक्रों अथवा कमलों को जो अभी तक सुषुप्त अवस्था में पडे हुए हैं, जागृत करने से है। यह कार्य प्राणशक्ति से संपन्न होता है, प्राणशक्ति द्वारा इन्हें जागृत किया जाता है।

अब मैं आप को इन चैतन्य केन्द्रों का परिचय दे रहा हूँ।

योगशास्त्रों में विभिन्न अपेक्षाओं से इनकी संख्याएँ भिन्न-भिन्न दी गई हैं, कहीं छह चक्र बताये गये तो कहीं सात, कहीं नौ तो कहीं हजार तक की संख्या बता दी गई है। लेकिन मैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपको प्रमुख सात केन्द्रों के बारे में ही बताऊँगा। साथ ही इन्हें जागृत करने की विधि और इनके जागृत होने पर जो विशेष उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं; उन पर भी प्रकाश डालूँगा।

(१) **मूलाधार चक्र** - इसका स्थान गुदामूल में, जहाँ सुषुम्ना नाड़ी का अन्त होता है, इसका आकार ४ दल वाले कमल जैसा है, वर्ण लाल हैं। कमल दल के बीजाक्षर वं, शं, षं, सं, हैं। शिखाकर स्वर्णिम ज्योति के रूप में ध्यान किया जाता है। इस पर ध्यान करने का फल आयोग्य और अध्यात्म विद्या में प्रवृत्ति के रूप में मिलता है। यह ऊर्जा केन्द्र है। साधक चक्रों में प्रवेश इसी केन्द्र से करता है।

(२) **स्वाधिष्ठान चक्र** - इसका स्थान नाभि और लिंगमूल के मध्य में है। कमल दल छह हैं, बीजाक्षर हैं - बं भं मं यं रं लं। वर्ण सिन्दूरी है। बिजली की रेखा के समान इसका ज्योति स्वरूप है और इस चक्र पर ध्यान करने से वासनाओं का क्षय होता है तथा तेजस्विता बढ़ती है। इसे स्वास्थ्य केन्द्र भी कहा गया है।

(३) **मणिपूर चक्र** - इसे शक्ति केन्द्र भी कहते हैं। इसका स्थान नाभि और वर्ण नील है इसकी ज्योति का स्वरूप बाल सूर्य के समान अरूण है यानी इस केन्द्र पर ध्यान करते समय बाल सूर्य की अरूणाभा का ध्यान किया जाता है। इस चक्र की आकृति दस कमल जैसी है। बीजाक्षर है-डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं, फं। इस चक्र पर ध्यान करने से साधक को आरोग्य, आत्म साक्षात्कार और प्रभावशीलता की उपलब्धि होती है।

(४) **अनाहत चक्र** - इसे तैजस केन्द्र भी कहा जाता है। इसका स्थान हृदय और वर्ण अरूण है। यहाँ अग्निशिखा का ध्यान किया जाता है। यह १२ दल कमलाकार है। बीजाक्षर है - कं खं गं घं ङं. चं छं जं झं ञं टं ठं। इस पर ध्यान करने से आत्मस्थता और यौगिक उपलब्धियाँ साधक को प्राप्ती होती हैं।

आत्मस्थता की दशा में साधक को एक विशेष मधुर ध्वनि हृदय स्थान से निकलती हुई सुनाई देती हैं। इसी ध्वनि को मध्यकालीन साधकों ने 'अनहदनाद' कहा है।

(५) **विशुद्धि चक्र** - इसे आनन्द केन्द्र भी कहा गया है। इसका कारण यह है कि इस चक्र के जागने पर कामना-विजय होती है और कामनाओं (इच्छाओं) की विजय से विशिष्ट आनन्द की अनुभूति साधक को होती है।

यह चक्र कंठ स्थान में अवस्थित है। सोलह दल कमलाकृति रूप है। इसके बीजाक्षर 'अ' से 'अः' तक १६ मातृका वर्ण है। वर्ण इसका धुम्र के समान है किन्तु इस पर दीपशिखा का ध्यान किया जाता है।

आग्नेयी धारणा मं जो अष्टकर्म उनके प्रथम अक्षरांकित औंधे अष्टदल कमल की कल्पना की जाती है, उसका नाल कंठ प्रदेश में अवस्थित होता है और वह कमल-दल हृदय प्रदेश पर कल्पित किया जाता है। वह कमल और उसकी नाल धूम्रवर्ण की होती है, इसी कारण विशुद्धि चक्र (जब तक वह जागृत नहीं होता तब तक) का वर्ण धूम्र रहता है। और जागृत होने पर दीपशिखा के समान उज्ज्वल हो जाता है, जैसे निर्धूम अग्नि-शिखा।

(६) **अज्ञा चक्र** - इसको दर्शन केन्द्र भी कहा जाता है। यह भ्रूमध्य में अवस्थित है। इसका वर्ण श्वेत है और शरदचन्द्र की ज्योति स्वरूप ध्यान किया जाता है। यहाँ द्विदल कमलाकृति की रचना है। इसके बीजाक्षर है - हं क्षं। इस पर ध्यान करने से अन्तर्ज्ञान की प्राप्ति और वाक्सिद्धि की उपलब्धि होती है, साधक जो कुछ भी कह देता है, वैसा ही हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस चक्र का योग साधना में अत्यधिक महत्व है। इस चक्र को त्रिवेणी संगम भी कहा जाता है, क्योंकि इसी केन्द्र पर ईंड़ा, पिंगला और सुषुम्ना - तीनों नाड़ियों का संगम (मिलन) होता है इस चक्र के जागृत होने पर साधक को अन्य किसी से भी निर्देश लेने की आवश्यकता नही रहती, वह अपने सतत् अभ्यास से ही आगे बढ़ जाता है और सहस्त्रार चक्र को जागृत कर लेता है।

(७) **सहस्त्रार चक्र** - इस को शून्य चक्र और ज्ञान केन्द्र भी कहा जाता है। इसका स्थान कपाल में स्थित तालू में है। यह स्थान समस्त शक्तियों का केन्द्र है। अत: इस चक्र के जागृत होते ही, साधक की समस्त शक्तियाँ उद्घाटित हो जाती है। उसकी शक्ति अतुल और तेज प्रचण्ड हो जाता है।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार भी मस्तिष्क समस्त शारीरिक-मानसिक क्रियाओं का केन्द्र है। स्मृति, ज्ञान-शक्ति, क्रिया-शक्ति आदि सभी प्रकार के केन्द्र यहीं अवस्थित हैं। मस्तिष्क में ही निर्देशन कक्ष हैं, जहाँ से समस्त आवेगों, संवेगों, क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं का नियंत्रण होता है और योग्य निर्देशन दिया जाता है।

आधुनिक भाषा में मस्तिष्क एक पावर हाउस है, जहाँ से समस्त शरीर को उर्जा सप्लाई होती है। नियंत्रक के रूप में यह हैड आफिस है, जिसके निर्देशन में शरीर के अंगोपांग रूपी समस्त ब्रांच ओफिस कार्य करते है।

अत: योग साधना की दृष्टि से भी इस केन्द्र का सर्वाधिक महत्व है।

योग ग्रंथों में यहाँ सहस्त्रदल कमल अवस्थित माना गया है। सहस्त्रार का अभिप्राय ही है-हजार आरक। आरकों को ही योग की भाषा में दल या पंखुड़ियाँ कहा गया है।

इस केन्द्र में अवस्थित कमल अवर्ण माना गया है। यानी इस पर ध्यान केन्द्रित करते समय किसी भी वर्ण (रंग) की कल्पना नहीं की जाती है।

नवपद की साधना में भी इस केन्द्र पर सिद्ध परमेष्ठी का ध्यान किया जाता है और सिद्ध भगवान अवर्ण हैं ही।

इस केन्द्र पर ध्यान करके जब साधक इसे जागृत करता है तो प्रचण्ड तेज प्रकट होता है और इसका फल मुक्ति प्राप्ति है।

तीर्थंकरों, आदि अलौकिक पुरूषों के सिर के पीछे चित्रों में जो प्रभामंडल दिखाया जाता है, वह इस चक्र से ही प्रस्फुटित तेज से निर्मित होता है। इस स्थान पर अवस्थित सहस्त्रदल कमल के प्रत्येक दल से एक-एक किरण निकलती है, इस प्रकार हजार किरणें प्रस्फुटित होती हैं। इसीलिए योग-ग्रंथों में शास्त्रों में कहा गया है कि पूर्ण महापुरूषों का प्रभामंडल हजार किरणों वाला होता है। स्तोत्रों में भी भगवान तीर्थंकर के भाममण्डल। (प्रभामण्डल)। के विषय में कहा गया है - 'चन्देसु निम्मलयरा आइच्चेसु अहियं पयासयरा' भगवान का तेज सूर्य-चन्द्र के प्रकाश से भी कोटि गुना अधिक निर्मल शुभ्र और प्रभास्वर होता है।

इतना अवर्णनीय प्रभाव है सहस्त्रार चक्र का। इसके जाग्रत होते ही साधक पूर्णतया किष्काम, निष्पाप, ममत्व रहित, परमसमाधि में लीन, जीवन्मुख हो जाता है।

यह मैंने आप लोगों को इन सातों चक्रों का स्वरूप और उनके जागृत होने पर प्राप्त उपलब्धियों के विषय में समझाया। अब मैं आपको इन चक्रों को जागृत करने की विधि का परिचय देना चाहता हूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्र जागरण की विधि

आप सुखासन अथवा पद्मासन से बैठ जाइये। आसन स्थिर रखे। मन से सारे संकल्प-विकल्प बाहर निकाल दें। स्थिरचित्त होकर दीर्घश्वास लें, पूरक करें, श्वास में ली हुई प्राणवायु को फेफड़े, हृदय से नीचे की ओर ले जाते हुए गुदामूल तक पहुँचा दें, सुषुम्ना नाड़ी का यही प्रवेश द्वार हैं, जो मूलाधार चक्र कहलाता है। इस चक्र में वायु का प्रवेश करावें और सुषुम्ना नाड़ी में ऊपर की ओर धकेलें।

यह क्रिया बार-बार करनी पड़ेगी। पहली बार में ही सफलता मिलना बहुत कठिन है, किन्तु बार-बार के अभ्यास से सरल सहज हो जायेगी।

अब मूलाधार चक्र-मार्ग से सुषुम्ना में ऊपर की ओर चढ़ती हुई प्राणवायु को और ऊर्ध्वगामिनी बनावें, स्वाधिष्ठान चक्र में प्रवेश करायें

इसी तरह स्वाधिष्ठान, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञाचक्र तक प्राणवायु को ले जायें और नासिकारन्ध्र से इसका रेचन करें।

ध्यान रखें यह सभी चक्र सुषुम्ना नाड़ी में एक सीध में अवस्थित हैं। अत: प्राणवायु का संचरण सुषुम्ना नाड़ी में स्तम्भ के समान ऊर्ध्वगामी होता चला जाय।

प्रत्येक चक्र पर उनके स्वरूप में बताये अनुसार बीजाक्षरों, वर्णो आदि का भी ध्यान करते चलें। इस विधि से चक्र शीघ्र ही जाग्रत हो जाते हैं।

दूसरी विधि यह है कि मूलाधार और स्वाधिष्ठान चक्र को छोड़ दें। दीर्घश्वास लेकर नाभि प्रदेश में कुम्भक करें, फिर उस प्राणवायु को अनाहत और विशुद्धि चक्र में प्रवेश कराते हुए आज्ञा चक्र पर ले जायें। इन तीनों चक्रों को पार करते सिर्फ आज्ञा चक्र पर ही प्राणवायु का स्तम्भन कर दें रोग दें और मन को स्थिर करके आज्ञाचक्र के स्वरूप में बताये गये बीजाक्षर, वर्ण, कमलदल आदि का ध्यान करें। जब मन स्तम्भित होना शुरू हो जाय, ध्यान में एकाग्र होने लगे तो मन का आश्रय छोड़कर आत्मस्थ हो जायें।

इस विधि से अनाहत, विशुद्धि और आज्ञाचक्र शीघ्र ही जागृत हो जाते है।

यह दूसरी विधि अध्यात्म योगियों के लिए अधिक हितकर है; क्योंकि नाभि प्रदेश से नीचे गुदा स्थान तक का। (पेडू और वह भाग जहाँ जननेन्द्रिय हैं)। भाग काम केन्द्र है। यदि साधक के हृदय में वासना का कुछ भी अंश होता है तो काम-केन्द्र भड़क सकता है, परिणामस्वरूप साधक अपनी ऊर्ध्वमुखी साधना से पतित हो सकता हैं।

यही कारण है कि कुण्डलिनी जागरण करने वाले बहुत से साधक बीच ही में पतित होते देखे जाते हैं। वे अपने को भगवान तो कहलवाते हैं; किन्तु बन जाते है वासना के दास।

अत: अच्छा यही है कि शक्ति एवं उर्जा प्राप्त करने की लालसा में इन काम-केन्द्र अवस्थित चक्रों को छेड़ा ही न जाए। जो साधक इनको नहीं छेड़ते उनके पतित होने की संभावना बहुत कम रह जाती है।

केन्द्र जागृत होने की पहचान

यह सामान्य जिज्ञासा है कि हमें इतने दिन ध्यान-साधना करते हुए हो गये किन्तु हमारा अमुक चक्र जागृत हुआ अथवा नहीं। बहुत से साधक मेरे पास आते हैं और इसी प्रकार के प्रश्न करते है।

इस प्रश्न का समाधान मैं प्रस्तुत कर रहा हूँ, ऐसी पहचान बता रहा हूँ जिससे आप स्वयं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जान सकते हैं कि हमारा अमुक चक्र जागृत हुआ अथवा नहीं।

इसकी पहचान के लिए निम्न सूत्र हैं -

(१) चक्र पर प्राणों की सहज गति होना यानि आप आज्ञाचक्र जागृत करना चाहते हैं तो श्वास प्रक्रिया (आपके बिना प्रयास के सहजतया) ऐसी बन जाय कि आप जो श्वास द्वारा प्राणवायु ग्रहण कर रहे हैं, वह नाभि प्रदेश तक जाय, वहाँ कुछ क्षण के लिए रूके और ऊर्ध्वगामिनी बनकर आज्ञा चक्र तक पहुँचे, वहाँ कुछ क्षणों तक के लिए स्तम्भित हो और फिर उस वायु का नासापुट द्वारा रेचन हो, उच्छ्वास के रूप में बाहर निकल जाय।

(२) ऐसा प्रतीत हो कि सुषुम्ना नाडी में और विशिष्ट रुप से उस चक्र में जिसे आप जागृत करने का अभ्यास कर रहे है, उस चक्र में चींटियाँ सी रेंग रही है अर्थात् स्पन्दनों की अनुभूति सतत् होती रहे।

(३) जिस चक्र को आप जगा रहे है, उसमें स्पन्दनों की स्पष्ट अनुभूति के साथ प्रकाश भी दिखाई दे। जैसे-आज्ञा चक्र की साधना में जागृत होने पर आँखें बन्द करते ही शरत् चन्द्र की ज्योत्स्ना जैसा धवल दूधिया प्रकाश सभी और फैला हुआ दिखाई देने लगे, जैसे सभी वस्तुएँ दुग्ध धवल हो गई हैं।

(४) वृत्तियों में अप्रत्याशित परिवर्तन परिलक्षित हो और हृदय में अपूर्व आनन्द की अनुभूति हो। उदाहरणार्थ-विशुद्धि चक्र पर ध्यान करने का फल कामना विजय है। तो आपकी इच्छाओं और कामनाओं की संसार की ओर रुचि थी उसमें इतना अधिक परिवर्तन आ जाये, आपकी रुचि उस ओर से इतनी अधिक हट जाए कि आप स्वयं ही आश्चर्यचकित रह जायें कि ऐसा परिवर्तन बिना किसी बाह्य कारण के कैसे हो गया?

इसके अतिरिक्त बहुत से साधक यह प्रश्न भी पूछते हैं कि कोई भी चक्र कितने समय में जागृत हो जाता है। यानी चक्र जागृति की महीना, दो महीना, छह महीना, एक वर्ष, दो वर्ष आदि कितनी समय-सीमा हैं।

इस विषय में मेरा अनुभव यह है कि चक्र जागृति की कोई समय-सीमा निश्चित नहीं की जा संकती। यह तो साधक के संकल्प बल पर आधारित है। दृढ संकल्पी साधक १०-१५ मिनट प्रतिदिन ध्यान करके किसी भी चक्र को तीन महीने में जागृत कर सकते हैं, जबकि शिथिल संकल्प वाले साधक वर्षो में भी सफल नहीं हो पाते।

नोट-इस चक्र जागरण विधि, समय-सीमा आदि में मैंने सहस्त्रार चक्र (जो ब्रह्मरंध्र में अवस्थित है और ज्ञान केन्द्र भी कहा जाता है)। की जागरण विधि इसलिए नहीं बताई है कि यह योग की उच्च्तम सिद्धि है, दृश्य रुप में इससे प्रभामण्डल बनता है और साधक के अन्दर प्रचण्ड तेज उत्पन्न होता है तथा फल मुक्ति है। किन्तु आज के मानवों की शारीरिक क्षमता इतनी नहीं है कि वे उस प्रचण्ड तेज को सह सकें और मुक्ति प्राप्त कर सकें।

शरीर स्थित चक्रो की पूरी जानकारी के बाद अब मैं चाहता हूँ कि आपको शरीर शिथिलीकरण के बारे में भी कुछ बता दूँ।

तनाव मुक्ति - शरीर शिथिलीकरण कायोत्सर्ग का ही एक अंग है। इससे शारीरिक और मानसिक तनाव समाप्त होकर नई स्फूर्ति और ऊर्जा प्राप्त होती है, शरीर में हल्कापन आता है।

सिर्फ शारिरीक लाभ ही अध्यात्म साधक का लक्ष्य नहीं होता, और इससे स्वानन्दानुभूति भी नहीं होती। इसलिए शरीर शिथिलीकरण के साथ व्युत्सर्जन का चिन्तन भी आवश्यक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्युत्सर्जन किसका? सभी संयोगज वस्तुओं का। क्योंकि बाह्य संयोग ही स्वानन्दानुभूति के प्रमुख बाधक तत्व हैं। जैसा कि कहा है

संयोगतो दु:खमनेक भेदं,
यतोश्नुते जन्मवने शरीरी।
ततस्त्रिधासो परिवर्जनीयो,
यियासुना निर्वृत्तमात्मनीनाम्।

अत: शिथिलीकरण के साथ-साथ अध्यात्म साधक भावना भाता हैं-

यह भवन, आसन, वस्त्र, शरीर आदि सभी बाह्य वस्तुएँ संयोगज है, मेरी नहीं है। विषय-कषाय आदि की भावनाएँ भी परजन्य है, कर्मोदय से हो रही हैं। मैं तो एक मात्र शुद्ध, बुद्ध-चिद्रूप आत्मा हूँ, ज्ञान-दर्शन ही मेरा स्वभाव है इसी में रमण करना मेरा लक्ष्य/कर्तव्य है।

उसके अन्तर से भाव-प्रवाह बहता है

शुद्धोऽहं, बुद्धोऽहं, सर्वचिद्ध पोऽहं

ध्वनियाँ

इस भावना-प्रवाह के साथ-साथ शुभ और शुद्ध आवेग में उसके मुख से ध्वनियाँ प्रस्फुटित होती

१. अर्हम् २. उँ ह्रीं अर्हं अर्हं अर्हम् ३. मनोविजेता जगतोविजेता ४. चिदानन्द रुपं नमो वीतरागं

और फिर

५. अरिहंते सरणं पवज्जामि,
सिद्धे सरणं
पवज्जमि,
साहू सरणं पवज्जामि

६. चार शरण दु:खहरण जगत में,
औरा न शरण कोई होगा ।
जो भवि प्राणी करे आराधन,
उसका अजूर अमर पद होगा।

आप भी साधक हैं। स्वानन्दानुभूति ध्यान साधना में प्रवृत्त हुए हैं। मैंने आपको इस ध्यान साधन की पद्धति बताई। आप सभी ने हदयंगम की।

मेरा विश्वास है कि आप मेरे द्वारा बताई हुई विधि से ध्यान साधना करेंगे और स्वानन्दानुभूति का अमृत रस पान करेंगे।

अन्त में, दो शब्द मैं स्वानन्दानुभूति के बारे में भी कह दूँ। यों तो स्वानन्दानुभूति का स्वरुप शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। यह तो गूंगे का गुड है, जो चाखे, वही जाने बता नहीं सकता। किन्तु फिर भी कुछ आभास तो आपको करा ही दू।

स्वानन्दानुभूति में तीन शब्द है -स्व, आनन्द और अनुभूति। स्व का अभिप्राय है आत्मा। कषाय आत्मा नहीं, शुद्ध आत्मा। आपकी, मेरी, सबकी, सभी भव्य प्राणियों की आत्मा आनन्दमय है। आनन्द आत्मा का स्वभाव है। अरिहंत भगवान के चार अनन्तचतुष्टयों में अनन्तमुख कहा गया है। वह सुख ही आत्मा का अनन्दमय स्वभाव है। इसीलिए आत्मा को सच्चिदानन्दघन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी कहा जाता है। इसी आत्मिक आनन्द की अनुभूति करना, अनुभव में लाना, इस लाना इस सुख का रसास्वादन करना स्वानन्दानुभूति है।

मैं विश्वास के साथ कहाता हूँ कि उपरिवर्णित ध्यान पद्धति की साधनास करके आप अवश्य ही उस आत्मिक आनन्द का अनुभव करेंगे, जो अलौकिक है, अचिन्त्य है, अनुपम है, जिसकी तुलना में संसार का बडे से बडा सुख भी किसी गिनती में नहीं है।

मेरी भावना है-आप इसी स्वानन्दानुभूति में निमग्न हों।

● मोह और प्रेम में बडा फर्क है। मोह किसी क्षण टूट सकता है पलट सकता हैं अथवा ठीक विपरीत दिशा में भी दौड सकता हैं। मोह की चमक-दमक मात्र स्वार्थ या तृप्ति पूर्ण होने तक ही होती है। जबकि प्रेम में किंचित भी परिवर्तन नही होता। इसमे कुछ भी प्राप्त करने का भाव नही हैं, मात्र देने की इच्छा होती है। प्रेम तो देता हैं, देता रहता है आजीवन देता रहता/प्रेम में लूट-खसोट नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org